

राजनीतिक एजेन्डे पर शिक्षा

भारतीय जनतंत्र में बहुदलीय राजनीतिक प्रणाली का चलन है। देश की शासन व्यवस्था में हिस्सेदारी के दावेदार राजनीतिक दल से अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी सोच, नीतियों और कार्यक्रमों को राष्ट्र के समक्ष प्रस्तुत करे। कोई भी दल राज्य सत्ता में निर्वाचन प्रक्रिया के जरिये जगह हासिल करता है। भारत का निर्वाचन आयोग कुछ निश्चित अर्हताओं के आधार पर किसी भी दल को 'राजनीतिक दल' के रूप में मान्यता और 'चुनाव चिन्ह' प्रदान कर देता है। आजादी के समय देश का बहुसंख्य गण-समाज निरक्षर था, इसलिए उसे मतदान प्रक्रिया में 'चुनाव चिन्ह' पर निर्भर होना पड़ा। लेकिन आजादी के बाद भी चूंकि देश के बहुसंख्य गण-समाज की निरक्षरता बरकरार है, इसलिए चुनाव चिन्ह पर निर्भरता भी बनी हुई है। राजनीतिक दल सामान्यतः चुनाव के समय अपने चिंतन, नीतियों और कार्यक्रम को चुनाव घोषणा-पत्र के जरिये जनता के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। यह सामान्य प्रचलन है कोई अनिवार्यता नहीं है। वैसे चुनाव लड़ने के लिए किसी राजनीतिक दल से संबद्ध होना या बाकायदा अपना चुनावी एजेंडा प्रस्तुत करना भी आवश्यक नहीं है। बस, संबंधित चुनाव अधिकारी कार्यालय की कुछ खानापूरी के पश्चात आप निर्दलीय प्रत्याक्षी के रूप में चुनावी समर में कूद सकते हैं। तथापि भारतीय जनतंत्र के अस्तित्व में आने से अब तक लगभग सभी राजनीतिक दल संसदीय और राज्य सरकारों के चुनाव के वक्त अपना दलीय घोषणा पत्र प्रस्तुत करते रहे हैं। हालांकि निरक्षरों की बहुसंख्य आबादी में छपे हुए घोषणा पत्र का कोई खास मतलब नहीं है। राजनीतिक दलों का पूरा जोर मतदाताओं को अपने 'चुनाव चिन्ह' की पहचान कराने और रिझाकर अपने दल की ओर आकर्षित करने पर होता है। जमीनी स्तर पर कई बार राजनीतिक कार्यकर्ताओं को चुनाव चिन्ह के गुण-दोष प्रचारित करते देखा जा सकता है। ऐसे में राजनीतिक दल या प्रत्याक्षी के गुण-दोष पृष्ठभूमि में चले जाते हैं। चुनाव घोषणा पत्र की फिर भी अहमियत स्थापित हो सकती थी, अगर सत्ता में आने के बाद कोई राजनीतिक दल उसकी अनुपालना करता। लेकिन जो भी दल चुनाव जीत कर सत्ता में आते हैं, उनका घोषणा पत्र की अक्षरशः पालना करना तो दूर की बात है वे इसे दिशा-निर्देशक दस्तावेज भी मानते हों, यह भी नहीं देखा गया। कई बार कुछ राजनीतिक दलों का व्यवहार अपने ही घोषणा पत्र के विपरीत तक देखा गया है। कुल मिलाकर देखा जाये तो चुनाव घोषणा पत्र और उसके क्रियान्वयन के बीच का द्वैत बढ़ता गया है और इसे अधिक से अधिक दल विशेष की 'राजनीतिक आकांक्षा' अथवा 'जनमानस' को लुभाने वाला दस्तावेज कहा जा सकता है। यह एक साथ विडंबनापूर्ण और शर्मनाक स्थिति है। इसके बावजूद चूंकि हर चुनाव में राजनीतिक दलों के घोषणा पत्र जारी होते हैं तो उन पर चर्चा भी होती ही है।

विभिन्न राजनीतिक दलों के घोषणा पत्रों में शिक्षा की स्थिति का आकलन ऊपर कही बात की ही ताईद करता है। देश के सत्ता प्रतिष्ठान में स्थान पाने के लिए और एक राजनीतिक दल अथवा प्रत्याक्षी के रूप में मान्यता हासिल करने के लिए एक अर्हता यह भी है कि आप देश के संविधान के प्रति निष्ठावान हों। चुनाव घोषणा-पत्र का नीतिगत दायरा और कार्यक्रमों की दिशा भी संवैधानिक संकल्पों की रोशनी में ही निर्धारित होती है। भारतीय संविधान का खंड 4 नीति निर्देशक तत्वों का है जिसमें राज्य को तमाम तरह के निर्देश दिए गये हैं कि राज्य को क्या करना है। उसमें अनुच्छेद 45 स्पष्ट

रूप से कहता है कि संविधान बनने के दस वर्ष के अंदर (यानी सन् 60 तक) राज्य सभी बालकों को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान करेगा। संविधान के इस संकल्प को लेकर गत पांच दशकों से विभिन्न राजनीतिक दल अपने घोषणा-पत्रों में अपनी अपनी तरह से वायदे करते आये हैं लेकिन आज भी लगभग आधे लड़के और दो तिहाई लड़कियां स्कूल की चाहरदीवारी से बाहर हैं। यह वस्तुस्थिति वायदों के खोखलेपन का स्वतः प्रमाण है।

शिक्षा को लेकर संवैधानिक संकल्प को प्रस्थान बिन्दु मानकर इस दिशा में क्रियान्वयन का आकलन करें तो हम पाते हैं कि शिक्षा के उद्देश्य का विरलीकरण ही हुआ है। संवैधानिक दायित्व के विरलीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में देखी जा सकती है। इस दस्तावेज में यह स्वीकार किया गया कि स्कूल के बाहर रह रहे आधे लड़कों और दो तिहाई लड़कियों को शिक्षा औपचारिक धारा के स्कूलों के जरिये देना संभव नहीं है, इसके लिए उसके समतुल्य अनौपचारिक स्कूल खोले जायेंगे। ये अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र औपचारिक स्कूलों के कितने 'समतुल्य' हैं, यह अब कहने की जरूरत नहीं है। विरलीकरण की इस प्रक्रिया का दूसरा चरण 1990 के ज्योमितेन सम्मेलन से शुरू होता है जिसमें बच्चे के लिए आठ साल की शिक्षा की जगह पांच साल की शिक्षा अवधि को स्थापित कर दिया गया। ज्योमितेन घोषणा पर भारत की सहमति संवैधानिक संकल्प से विचलन है। इस पर टिप्पणी करते हुए शिक्षाविद् अनिल सद्गोपाल ने अपने एक व्याख्यान में कहा है, "मैं भारत की शिक्षा के इतिहास को ज्योमितेन पूर्व और उत्तर ज्योमितेन सम्मेलन के रूप में, स्पष्ट रूप में दो ऐतिहासिक खंडों में बांटकर देखता हूँ। पहला जहां पर संविधान प्रेरणा होता है, दूसरा जहां संविधान प्रेरणा नहीं होता।" बच्चों की शिक्षा के प्रति राज्य की जबावदेही को पांचवी कक्षा तक सीमित करने के परिणाम की भयावहता को पहले से मौजूद प्राइमरी और मिडिल स्कूलों के अनुपात में देखने की जरूरत है। यदि 5 प्राइमरी स्कूलों के पीछे एक मिडिल स्कूल है तो अधिकांश बच्चों का बीच में पढ़ाई छोड़ देना लाजिमी है। ऐसी स्थिति में राज्य का प्राइमरी शिक्षा तक अपने को सीमित कर लेना दुर्भाग्यजनक है। दूसरे, यह विचलन उसी समय हुआ, जब राममूर्ति समिति (1990) ने अपनी रिपोर्ट में शिक्षा की एक समान गुणवत्ता का मुद्दा उठाया था। उल्लेखनीय है कि 1986 की राष्ट्रीय नीति ने एक ओर अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम और दूसरी ओर नवोदय विद्यालय खड़े करके शिक्षा के विषम ढांचे की प्रस्तावना की थी। राममूर्ति समिति ने इस पर एतराज करते हुए कहा था कि शिक्षा से समानता और सामाजिक न्याय का प्रश्न जुड़ा है। लेकिन इस प्रश्न को नजरअंदाज करते हुए भारत सरकार विश्व बैंक द्वारा प्रायोजित 'जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम' देश भर में लागू कर चुकी है।

अब जरा राजनीतिक दलों के चुनाव घोषणा पत्रों में शिक्षा की स्थिति का जायजा लिया जाये। राष्ट्रीय मोर्चा के 1991 के घोषणा पत्र के पूर्वार्द्ध में राममूर्ति समिति की अनुशंसाओं के प्रति स्वीकार भाव था किन्तु 'भविष्य के कार्यभारों' के तहत शिक्षा की बात करते समय इसे भुला दिया गया था। कांग्रेस (इ) का 1996 का घोषणा पत्र सकल राष्ट्रीय उत्पाद का छह प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करने का वादा करता था जबकि शिक्षा पर व्यय में हास कांग्रेस (इ) के ही पिछले शासन काल (1991-96) के दौरान हुआ था। माकपा के 1991 के घोषणा पत्र की कुल 26 प्राथमिकताओं में शिक्षा 21 वीं प्राथमिकता पर थी। जबकि इसी साल के माकपा के घोषणा पत्र में 'अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा' (प्रारंभिक शिक्षा नहीं) का प्रयोग किया गया था। 1998 के संसदीय चुनाव में 'शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा' का नारा देकर सत्ता में आयी भाजपा ने अपने घोषणा पत्र में 'प्रारंभिक शिक्षा को मौलिक अधिकार' बनाने का वादा नहीं किया। बाद में, उसने 'पाठ्यक्रम बदलने' और 'नैतिक शिक्षा' का पैकेज लागू करने का असफल प्रयास किया। कांग्रेस (इ) स्कूल में दोपहर का भोजन दिए जाने का श्रेय बटोरती रही। शिक्षा को लेकर वामपंथी दलों में भी दृढ़ राजनीतिक इच्छा दिखायी नहीं पड़ती।

राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन का घोषणापत्र (1999) साफ कहता है : “हम पांचवी कक्षा तक निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने के लिए संविधान में किए गये प्रावधान को कार्यान्वित करेंगे।” कांग्रेस का ताजा घोषणापत्र भी 14 वर्ष की उम्र तक के सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा ही दिलाने की बात करता है, आठ साल वाली प्रारंभिक शिक्षा की बात नहीं करता। दोनों के घोषणा पत्र में शिक्षा-दर्शन भी विरल होता गया है, मसलन शिक्षा की गुणवत्ता, शैक्षिक लिंगभेद हटाने और शिक्षा को सामाजिक अधिकार प्राप्त करने का माध्यम मानने जैसी इन राजनीतिक दलों की पूर्ववर्ती मान्यताएं मौजूदा घोषणा-पत्रों में नजर नहीं आती।

प्रारंभिक शिक्षा अर्जित करने को प्रत्येक भारतीय नागरिक का मूल अधिकार बनाने वाला 83 वां संविधान संशोधन विधेयक जुलाई, 1997 को राज्य सभा में प्रस्तुत किया गया था। इसे क्या कहा जाये कि 13 वीं संसद के इस ऐतिहासिक चुनाव समय में किसी भी राजनीतिक दल ने इस विधेयक को पारित कराने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता की घोषणा नहीं की है। अगर यह समझा जाये कि चुनाव घोषणा पत्र सिर्फ ‘हाथी के दांत’ होते हैं और अधिक से अधिक ये किसी राजनीतिक दल विशेष की ‘आंकांक्षा भर’ होते हैं तो क्या यह माना जाये कि शिक्षा को लेकर ‘यह छोटी सी इच्छा’ किसी भी राजनीतिक दल के भीतर विद्यमान नहीं है। ◆